अकेली

मन्नू भंडारी

सोमा बुआ बुढ़िया है।

सोमा बुआ परित्यक्ता है।

सोमा बुआ अकेली है।

सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा, उनकी जवानी चली गयी। पति को पुत्र-वियोग का ऐसा सदमा लगा कि व पत्नी, घर-बार तजकर तीरथवासी हुए और परिवार में कोई ऐसा सदस्य नहीं था जो उनके एकाकीपन को दूर करता। पिछले बीस वर्षों से उनके जीवन की इस एकरसता में किसी प्रकार का कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ, कोई परिवर्तन नहीं आया। यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे, पर कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आँखें नहीं बिछायीं। जब तक पति रहते, उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोज़मर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छन्द धारा को कुण्ठित कर देता। उस समय उनका घूमना-फिरना, मिलना-जुलना बन्द हो जाता, और संन्यासीजी महाराज से यह भी नहीं होता कि दो मीठे बोल बोलकर सोमा बुआ को एक ऐसा सम्बल ही पकड़ा दें, जिसका आसरा लेकर वे उनके वियोग के ग्यारह महीने काट दें। इस स्थिति में बुआ को अपनी ज़िन्दगी पास-पड़ोसवालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुण्डन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जाती और फिर छाती फाड़कर काम करतीं, मानो वे दूसरे के घर में नहीं, अपने ही घर में काम कर रही हों।

आजकल सोमा बुआ के पति आये हैं, और अभी-अभी कुछ कहा-सुनी होकर चुकी है। बुआ आँगन में बैठी धूप खा रही हैं, पास रखी कटोरी से तेल लेकर हाथों में मल रही हैं, और बड़बड़ा रही हैं। इस एक महीने में अन्य अवयवों के शिथिल हो जाने के कारण उनकी जीभ ही सबसे अधिक सजीव और सक्रिय हो उठती है। तभी हाथ में एक फटी साड़ी और पापड़ लेकर ऊपर से राधा भाभी उतरीं।

"क्या हो गया बुआ, क्यों बड़बड़ा रही हो? फिर संन्यासीजी महाराज ने कुछ कह दिया क्या?"

"अरे, मैं कहीं चली जाऊँ सो इन्हें नहीं सुहाता। कल चौकवाले किशोरीलाल के बेटे का मुण्डन था, सारी बिरादरी की न्यौता था। मैं तो जानती थी कि ये पैसे का गरूर है कि मुण्डन पर सारी बिरादरी को न्यौता है, पर काम उन नयी-नवेली बहुओं से सँभलेगा नहीं, सो जल्दी ही चली गयी। हुआ भी वही।" और सरककर बुआ ने राधा के हाथ से पापड़ लेकर सुखाने शुरू कर दिये। "एक काम गत से नहीं हो रहा था। अब घर में कोई बड़ा-बूढ़ा हो तो बतावे, या कभी किया हो तो जानें। गीतवाली औरतें मुण्डन पर बन्ना-बन्नी गा रही थीं। मेरा तो हँसते-हँसते पेट फूल

गया।" और उसकी याद से ही कुछ देर पहले का दुःख और आक्रोश धुल गया। अपने सहज स्वाभाविक रूप में वे कहने लगीं, "भट्टी पर देखो तो अजब तमाशा—समोसे कच्चे ही उतार दिये और इतने बना दिये कि दो बार खिला दो, और गुलाबजामुन इतने कम कि एक पंगत में भी पूरे न पड़े। उसी समय मैदा सानकर नये गुलाबजामुन बनाये। दोनों बहुएँ और किशोरीलाल तो बेचारे इतना जस मान रहे थे कि क्या बताऊँ! कहने लगे, 'अम्माँ! तुम न होतीं तो आज भद्द उड़ जाती। अम्माँ! तुमने लाज रख ली!' मैंने तो कह दिया कि अरे, अपने ही काम नहीं आवेंगे तो कोई बाहर से तो आवेगा नहीं। यह तो आजकल इनका रोटी-पानी का काम रहता है, नहीं तो मैं सवेरे से ही चली आती!"

"तो संन्यासी महाराज क्यों बिगड़ पड़े? उन्हें तुम्हारा आना-जाना अच्छा नहीं लगता बुआ!"

"यों तो मैं कहीं आऊँ-जाऊँ सो ही इन्हें नहीं सुहाता, और फिर कल किशोरी के यहाँ से बुलावा नहीं आया। अरे, मैं तो कहूँ कि घरवालों का कैसा बुलावा! वे लोग तो मुझे अपनी माँ से कम नहीं समझते, नहीं तो कौन भला यों भट्टी और भण्डारघर सौंप दे। पर उन्हें अब कौन समझावे? कहने लगे, तू ज़बरदस्ती दूसरों के घर में टाँग अड़ाती फिरती है।" और एकाएक उन्हें उस क्रोध-भरी वाणी और कटु वचनों का स्मरण हो आया, जिनकी बौछार कुछ देर पहले ही उन पर होकर चुकी थी। याद आते ही फिर उनके आँसू बह चले।

"अरे, रोती क्यों हो बुआ? कहना-सुनना तो चलता ही रहता है। संन्यासीजी महाराज एक महीने को तो आकर रहते हैं, सुन लिया करो और क्या?"

"सुनने को तो सुनती ही हूँ, पर मन तो दुखता ही है कि एक महीने को आते हैं तो भी कभी मीठे बोल नहीं बोलते। मेरा आना-जाना इन्हें सुहाता नहीं, सो तू ही बता राधा, ये तो साल में ग्यारह महीने हरिद्वार रहते हैं। इन्हें तो नाते-रिश्तेवालों से कुछ लेना-देना नहीं, पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है। मैं भी सबसे तोड़-ताड़कर बैठ जाऊँ तो कैसे चले? मैं तो इनसे कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अन्त समय में भी साथ रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी यहाँ इनके नाम को रोया करूँ। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ तो वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता..." और बुआ फूट-फूटकर रो पड़ीं। राधा ने आश्वासन देते हुए कहा, "रोओ नहीं बुआ! अरे, वे तो इसलिए नाराज़ हुए कि बिना बुलाये तुम चली गयीं।"

"बेचारे इतने हंगामे में बुलाना भूल गये तो मैं भी मान करके बैठ जाती? फिर घरवालों का कैसा बुलाना? मैं तो अपनेपन की बात जानती हूँ। कोई प्रेम नहीं रखे तो दस बुलावे पर नहीं जाऊँ और प्रेम रखे तो बिना बुलाये भी सिर के बल जाऊँ। मेरा अपना हरखू होता और उसके घर काम होता तो क्या मैं बुलावे के भरोसे बैठी रहती? मेरे लिए जैसा हरखू वैसा किशोरीलाल! आज हरखू नहीं है, इसी से दूसरों को देख-देखकर मन भरमाती रहती हूँ।" और वे हिचकियाँ लेने लगीं।

सूखे पापड़ों को बटोरते-बटोरते स्वर को भरसक कोमल बनाकर राधा ने कहा, "तुम भी बुआ बात को कहाँ-से-कहाँ ले गयीं! लो, अब चुप होओ। पापड़ भूनकर लाती हूँ, खाकर बताना, कैसा है?" और वह साड़ी समेटकर ऊपर चढ़ गयी।

कोई सप्ताह-भर बाद बुआ बड़े प्रसन्न मन से आयीं और संन्यासीजी से बोलीं, "सुनते हो, देवरजी के सुसरालवालों की किसी लड़की का सम्बन्ध भागीरथजी के यहाँ हुआ है। वे सब लोग यहीं आकर ब्याह कर रहे हैं। देवरजी के बाद तो उन लोगों से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा, फिर भी हैं समधी ही। वे तो तुमको भी बुलाये बिना नहीं मानेंगे। समधी को आखिर कैसे छोड़ सकते हैं?" और बुआ पुलकित होकर हँस पड़ी। संन्यासीजी की मौन उपेक्षा से उनके मन को ठेस तो पहुँची, फिर भी वे प्रसन्न थीं। इधर-उधर जाकर वे इस विवाह की प्रगति की खबरें लातीं! आखिर एक दिन वे यह भी सुन आयीं कि उनके समधी यहाँ आ गये। ज़ोर-शोर से तैयारियाँ हो रही हैं। सारी बिरादरी को दावत दी जायेगी—खूब रौनक होने वाली है। दोनों ही पैसेवाले ठहरे।

"क्या जाने हमारे घर तो बुलावा आयेगा या नहीं? देवरजी को मरे पच्चीस बरस हो गये, उसके बाद से तो

कोई सम्बन्ध ही नहीं रखा। रखे भी कौन? यह काम तो मर्दों का होता है, मैं तो मर्दवाली होकर भी बेमर्द की हूँ।" और एक ठण्डी साँस उनके दिल से निकल गयी।

"अरे, वाह बुआ! तुम्हारा नाम कैसे नहीं हो सकता! तुम तो समधिन ठहरीं। सम्बन्ध में न रहे, कोई रिश्ता थोड़े ही टूट जाता है!" दाल पीसती हुई घर की बड़ी बहू बोली।

"है, बुआ, नाम है। मैं तो सारी लिस्ट देखकर आयी हूँ।" विधवा ननद बोली। बैठे-ही-बैठे एकदम आगे सरककर बुआ ने बड़े उत्साह से पूछा, "तू अपनी आँखों से देखकर आयी है नाम? नाम तो होना ही चाहिए। पर मैंने सोचा कि क्या जाने आजकल की फैशन में पुराने सम्बन्धियों को बुलाना हो, न हो।" और बुआ बिना दो पल भी रुके वहाँ से चली पड़ीं। अपने घर जाकर सीधे राधा भाभी के कमरे में चढ़ी, "क्यों री राधा, तू तो जानती है कि नए फैशन में लड़की की शादी में क्या दिया जावे है? समधियों का मामला ठहरा, सो भी पैसेवाले। खाली हाथ जाऊँगी तो अच्छा नहीं लगेगा। मैं तो पुराने ज़माने की ठहरी, तू ही बता दे, क्या दूँ? अब कुछ बनने का समय तो रहा नहीं, दो दिन बाकी हैं, सो कुछ बना-बनाया ही खरीद लाना।"

"क्या देना चाहती हो अम्मा—ज़ेवर, कपड़ा या शृंगारदान या कोई और चांदी की चीज़ें?"

"मैं तो कुछ भी नहीं समूझँ, री। जो कुछ पास है, तुझे लाकर दे देती हूँ, जो तू ठीक समझे ले आना, बस भद्द नहीं उड़नी चाहिए! अच्छा, देखूँ पहले कि रुपये कितने हैं। और वे डगमगाते कदमों से नीचे आयीं। दो-तीन कपड़ों की गठरियाँ हटाकर एक छोटा-सा बक्स निकाला। बड़े जतन से उसे खोला—उसमें सात रुपये, कुछ रेज़गारी पड़ी थी, और एक अँगूठी। बुआ का अनुमान था कि रुपये कुछ ज़्यादा होंगे, पर जब सात ही रुपये निकले तो सोच में पड़ गयीं। रईस समधियों के घर में इतने-से रुपयों से तो बिन्दी भी नहीं लगेगी। उनकी नज़र अँगूठी पर गयी। यह उनके मृत-पुत्र की एकमात्र निशानी उनके पास रह गयी थी। बड़े-बड़े आर्थिक संकटों के समय भी वे उस अँगूठी का मोह नहीं छोड़ सकी थीं। आज भी एक बार उसे उठाते समय उनका दिल धड़क गया। फिर भी उन्होंने पाँच रुपये और वह अँगूठी आँचल में बाँध ली। बक्स को बन्द किया और फिर ऊपर को चलीं। पर इस बार उनके मन का उत्साह कुछ ठण्डा पड़ गया था, और पैरों की गति शिथिल! राधा के पास जाकर बोलीं, "रुपये तो नहीं निकले बहू। आये भी कहाँ से, मेरे कौन कमानेवाला बैठा है? उस कोठरी का किराया आता है, उसमें तो दो समय की रोटी निकल जाती है जैसे-तैसे!" और वे रो पड़ीं। राधा ने कहा, "क्या करूँ बुआ, आजकल मेरा भी हाथ तंग है, नहीं तो मैं ही दे देती। अरे, पर तुम देने के चक्कर में पड़ती ही क्यों हो? आजकल तो देने-लेने का रिवाज ही उठ गया।"

"नहीं रे राधा! समधियों का मामला ठहरा! पच्चीस बरस हो गये तो भी वे नहीं भूले, और मैं खाली हाथ जाऊँ? नहीं, नहीं, इससे तो न जाऊँ सो ही अच्छा!"

"तो जाओ ही मत। चलो छुट्टी हुई, इतने लोगों में किसे पता लगेगा कि आयी या नहीं।" राधा ने सारी समस्या का सीधा-सा हल बताते हुए कहा।

"बड़ा बुरा मानेंगे। सारे शहर के लोग जावेंगे, और मैं समधिन होकर नहीं जाऊँगी तो यही समझेंगे कि देवरजी मरे तो सम्बन्ध भी तोड़ लिया। नहीं, नहीं, तू यह अँगूठी बेच ही दे।" और उन्होंने आँचल की गाँठ खोलकर एक पुराने ज़माने की अँगूठी राधा के हाथ पर रख दी। फिर बड़ी मिन्नत के स्वर में बोलीं, "तू तो बाज़ार जाती है राधा, इसे बेच देना और जो कुछ ठीक समझे खरीद लेना। बस, शोभा रह जावे इतना ख्याल रखना।"

गली में बुआ ने चूड़ीवाले की आवाज़ सुनी तो एकाएक ही उनकी नज़र अपने हाथ की भद्दी-मटमैली चूड़ियों पर जाकर टिक गयी। कल समधियों के यहाँ जाना है, ज़ेवर नहीं तो कम-से-कम काँच की चूड़ी तो अच्छी पहन ले। पर एक अत्यन्त लाज ने उनके कदमों को रोक दिया। कोई देख लेगा तो? लेकिन दूसरे क्षण ही अपनी इस कमज़ोरी पर विजय पाती-सी वे पीछे के दरवाज़े पर पहुँच गयीं और एक रुपया कलदार खर्च करके लाल-हरी चूड़ियों के बन्द पहन लिये। पर सारे दिन हाथों को साड़ी के आँचल से ढके-ढके फिरीं।

शाम को राधा भाभी ने बुआ को चाँदी की एक सिन्दूरदानी, एक साड़ी और एक ब्लाउज़ का कपड़ा लाकर

दे दिया। सब कुछ देख पाकर बुआ बड़ी प्रसन्न हुई, और यह सोच-सोचकर कि जब वे ये सब दे देंगी तो उनकी समधिन पुरानी बातों की दुहाई दे-देकर उनकी मिलनसारिता की कितनी प्रशंसा करेगी, उनका मन पुलकित होने लगा। अँगूठी बेचने का गम भी जाता रहा। पासवाले बनिये के यहाँ से एक आने का पीला रंग लाकर रात में उन्होंने साड़ी रंगी। शादी में सफेद साड़ी पहनकर जाना क्या अच्छा लगेगा? रात में सोयीं तो मन कल की ओर दौड़ रहा था।

दूसरे दिन नौ बजते-बजते खाने का काम समाप्त कर डाला। अपनी रंगी हुई साड़ी देखी तो कुछ जँची नहीं। फिर ऊपर राधा के पास पहुँची, "क्यों राधा, तू तो रंगी साड़ी पहनती है तो बड़ी आब रहती है, चमक रहती है, इसमें तो चमक आयी नहीं!"

"तुमने कलफ़ जो नहीं लगाया अम्माँ, थोड़ा-सा माँड दे देतीं तो अच्छा रहता। अभी दे लो, ठीक हो जायेगी। बुलावा कब का है?"

"अरे, नये फैशन वालों की मत पूछो, ऐन मौकों पर बुलावा आता है। पांच बजे का मुहूरत है, दिन में कभी भी आ जावेगा।"

राधा भाभी मन-ही-मन मुस्करा उठी।

बुआ ने साड़ी में माँड लगाकर सुखा दिया। फिर एक नयी थाली निकाली, अपनी जवानी के दिनों में बुना हुआ क्रोशिये का एक छोटा-सा मेजपोश निकाला। थाली में साड़ी, सिन्दूरदानी, एक नारियल और थोड़े-से बताशे सजाये, फिर जाकर राधा को दिखाया। सन्यासी महाराज सवेरे से इस आयोजन को देख रहे थे, और उन्होंने कल से लेकर आज तक कोई पच्चीस बार चेतावनी दे दी थी कि यदि कोई बुलाने न आये तो चली मत जाना, नहीं तो ठीक नहीं होगा। हर बार बुआ ने बड़े ही विश्वास के साथ कहा, "मुझे क्या बावली समझ रखा है जो बिन बुलाये चली जाऊँगी? अरे वह पड़ोसवालों की नन्दा अपनी आँखों से बुलावे की लिस्ट में नाम देखकर आयी है। और बुलायेंगे क्यों नहीं? शहरवालों को बुलायेंगे और समधियों को नहीं बुलायेंगे क्या?"

तीन बजे के करीब बुआ को अनमने भाव से छत पर इधर-उधर घूमते देख राधा भाभी ने आवाज़ लगायी, "गयीं नहीं बुआ?"

एकाएक चौंकते हुए बुआ ने पूछा, "कितने बज गये राधा? ... क्या कहा, तीन? सरदी में तो दिन का पता नहीं लगता। बजे तीन ही हैं और धूप सारी छत पर से ऐसे सिमट गयी मानो शाम हो गयी।" फिर एकाएक जैसे ख्याल आया कि यह तो भाभी के प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ, ज़रा ठण्डे स्वर में बोलीं, "मुहूरत तो पाँच बजे का है, जाऊँगी तो चार तक जाऊँगी, अभी तो तीन ही बजे है।" बड़ी सावधानी से उन्होंने स्वर में लापरवाही का पुट दिया। बुआ छत पर से गली में नज़र फैलाये खड़ी थीं, उनके पीछे ही रस्सी पर धोती फैली हुई थी, जिसमें कलफ़ लगा था, और अबरक छिड़का हुआ था। अबरक के बिखरे हुए कण रह-रहकर धूप में चमक जाते थे, ठीक वैसे ही जैसे किसी को भी गली में घुसता देख बुआ का चेहरा चमक उठता था।

सात बजे के धुँधलके में राधा ने ऊपर से देखा तो छत की दीवार से सटी, गली की ओर मुँह किये एक छाया-मूर्ति दिखायी दी। उसका मन भर आया। बिना कुछ पूछे इतना ही कहा, "बुआ!" सर्दी में खड़ी-खड़ी यहाँ क्या कर रही हो? आज खाना नहीं बनेगा क्या, सात तो बज गये।

जैसे एकाएक नींद में से जागते हुए बुआ ने पूछा, "क्या कहा सात बज गये?" फिर जैसे अपने से ही बोलते हुए पूछा, "पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहूरत तो पाँच बजे का था!" और फिर एकाएक ही सारी स्थिति को समझते हुए, स्वर को भरसक संयत बनाकर बोलीं, "अरे, खाने का क्या है, अभी बना लूँगी। दो जनों का तो खाना है, क्या खाना और क्या पकाना!"

फिर उन्होंने सूखी साड़ी को उतारा। नीचे जाकर अच्छी तरह उसकी तह की, धीरे-धीरे हाथों की चूड़ियाँ खोलीं, थाली में सजाया हुआ सारा सामान उठाया और सारी चीज़ें बड़े जतन से अपने एकमात्र सन्दूक में रख दीं।

और फिर बड़े ही बुझे हुए दिल से अँगीठी जलाने लगीं।